रह्मतुल-लिल-आ़लमीन

मौलाना सैयद अबुल आला मौदूदी (रह०)

लिप्यंतरण

कौसर लईक़

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम
'अल्लाह के नाम से जो बड़ा ही मेहरबान और निहायत रहमवाला है'

दो शब्द

इस्लाम की नेमत हर ज़माने में इनसान को दो ही ज़रियों से पहुँची है। पहला ज़रिया अल्लाह का कलाम, दूसरा नबियों (अलैहि॰) की शख़्सियतें हैं। नबियों को अल्लाह ने न सिर्फ़ अपने कलाम की तब्लीग़ व तालीम और उसको समझाने का ज़रिया बनाया है, बल्कि इसी के साथ उनपर अमली क़ियादत और रहनुमाई की ज़िम्मेदारी भी डाली है ताकि वे अल्लाह के कलाम के मक़सद को सही तरीक़े पर पूरा करने के लिए इनसान और समाज को निखारें और इनसानी ज़िन्दगी के बिगड़े हुए निज़ाम को सँवारकर उसकी अच्छी तामीर कर दिखाएँ।

ये दोनों चीज़ें हमेशा से एक-दूसरे से ऐसी लाज़िम और ज़रूरी रही हैं कि उनमें से किसी को किसी से अलग करके न इनसान को कभी दीन की सही समझ नसीब हो सकी और न वह हिदायत से कोई फ़ायदा उठा सका। किताब को नबी से अलग कर दीजिए तो वह एक कश्ती है, जिसे बिना मल्लाह के अनाड़ी मुसाफ़िर लेकर ज़िन्दगी के समुन्द्र में चाहे कितना ही भटकते फिरें, लेकिन अपनी मंज़िल पर कभी नहीं पहुँच सकते, और इसी तरह नबी को किताब से अलग कर दीजिए तो ख़ुदा का रास्ता पाने के बजाय आदमी मल्लाह ही को ख़ुदा बना बैठने से कभी नहीं बच सकता। ये दोनों ही नतीजे पिछली क़ौमें देख चुकी हैं। हिन्दुओं ने अपने नबियों की ज़िन्दगियों को खो दिया और सिर्फ़ किताबें लेकर बैठ गए। नतीजा यह हुआ कि किताबें उनके लिए लफ़्ज़ी गोरख-धंधों से बढ़कर कुछ न रहीं। यहाँ तक कि आख़िरकार ख़ुद उन्हें भी वे गुमकर बैठे। ईसाइयों ने किताब को नज़रअन्दाज़ करके सिर्फ़ नबी का दामन पकड़ा और उसकी शख़्सियत के गिर्द घूमना शुरू किया; इसका भी नतीजा यह हुआ कि कोई चीज़ उन्हें अल्लाह के नबी को अल्लाह का बेटा, बल्कि ख़ुद उसे ही इलाह बनाने से न रोक सकी।

पुराने दौर की तरह अब इस नए दौर में भी इनसान को इस्लाम की नेमत हासिल होने के वही दो ज़रिये हैं जो शुरू से चले आ रहे हैं। पहला ख़ुदा का कलाम जो अब सिर्फ़ क़ुरआन मजीद की सूरत ही में मिल सकता है। दूसरा

नबी का नमूना (जीवन-चरित्र) जो अब सिर्फ़ हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की सीरते-पाक ही में महफ़ूज़ है। हमेशा की तरह आज भी इस्लाम की सही जानकारी और समझ इनसान को अगर हासिल हो सकती है, तो उसकी शक्ल यह है कि वह क़ुरआन को मुहम्मद (सल्ल०) से और मुहम्मद (सल्ल०) को क़ुरआन से समझे। इन दोनों को एक-दूसरे की मदद से जिसने समझ लिया उसने इस्लाम को समझ लिया। वरना मज़हब की समझ से भी महरूम रहा और आख़िरकार हिदायत से भी।

फिर क़ुरआन और मुहम्मद (सल्ल०) दोनों चूँकि एक मिशन रखते हैं। दोनों एक मक़सद और इरादे को लिए हुए आए हैं। इसलिए उनको समझने का दारोमदार इस पर है कि हम उनके मिशन और मक़सद व इरादे को किस हद तक समझते हैं। इस चीज़ को नज़रअन्दाज़ करके देखिए तो क़ुरआन इबारतों का एक ज़ख़ीरा और पैग़म्बर (सल्ल०) की सीरते-पाक वाक़िआत व घटनाओं का एक मजमूआ (संग्रह) है। आप लुग़त (शब्दकोश) और रिवायतों और इल्मी तहक़ीक़ व खोज की मदद से तफ़सीरों के ढ़ेर लगा सकते हैं और तारीख़ी तहक़ीक़ (खोजों) का कमाल दिखाकर अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की ज़ात और आपके अहद (दौर) के मुताल्लिक़ सबसे सही और सबसे वसीअ मालूमात के ढ़ेर लगा सकते हैं, मगर दीन (धर्म) की रूह तक नहीं पहुँच सकते, क्योंकि वह इबारत और वाक़िआत से नहीं, बल्कि इस मक़सद से जुड़ा है जिसके लिए क़ुरआन उतारा गया और मुहम्मद (सल्ल०) को जिसकी अलम्बरदारी के लिए खड़ा किया गया। अस्ल मक़सद का तसव्वुर जितना सही होगा, उतना ही क़ुरआन और सीरत का फ़हम (समझ) सही होगा, और जितना वह नाक़िस होगा, उतना ही उन दोनों का फ़हम नाक़िस रहेगा।

यह एक हक़ीक़त है कि क़ुरआन और मुहम्मद (सल्ल०) की सीरत दोनों ही समुन्द्र के उन किनारों की तरह हैं जो दूर तक दिखाई न दें। कोई इनसान यह चाहे कि उनके तमाम मानी और फ़ायदे व बर्कतों का इहाता करे तो इसमें कभी कामयाब नहीं हो सकता। अलबत्ता जिस चीज़ की कोशिश की जा सकती है, वह बस यह है कि जिस हद तक मुमकिन हो आदमी उनकी ज़्यादा-से-ज़्यादा सही समझ हासिल करे और उनकी मदद से दीन की सही रूह तक पहुँच जाए।

—सैयद अबुल आला मौदूदी

("मुहिसने-इनसानियत" पुस्तक की भूमिका से उद्धृत)

रह्मतुल-लिल-आलमीन

मौलाना सैयद अबुल आला मौदूदी (रह०) ने जून और जुलाई, सन 1969 ई० में मुसलमानों के सामने कई सीरत कॉन्फ्रेंसों में ख़िताब फ़रमाया था। मौलाना की यही तक़रीरें इकट्ठा करके एक किताब की शक्ल में पहले उर्दू में छपी, और अब यह हिन्दी में आपके हाथ में है। उम्मीद है कि यह पढ़नेवालों के लिए अल्लाह ने चाहा तो बहुत फ़ायदेमंद साबित होगी।

—प्रकाशक

नबी करीम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के मुबारक ज़माने में दुनिया के हालात जिस प्रकार के थे उनकी निशानदेही क़ुरआन की इस आयत से होती है—

> "ख़ुश्की और तरी में फ़साद फैल गया लोगों के अपने करतूतों की वजह से।"
>
> (क़ुरआन, 30:41)

यानी ख़ुश्की और तरी में फ़साद की जो कैफ़ियत फैली हुई थी, वह लोगों के अपने कर्मों और करतूतों का नतीजा थी। उस ज़माने की दो बड़ी ताक़तें फ़ारस और रूम जैसी कि आजकल रूस और अमेरिका हैं, आपस में दस्तो-गिरेबां थीं, और उस ज़माने की पूरी मुहज़्ज़ब (सभ्य) दुनिया में बद-अमनी, बेचैनी और फ़साद की कैफ़ियत पैदा हो चुकी थी। इस लपेट में ख़ुद अरब भी आ चुका था और उसकी हालत ऐसी थी गोया वह तबाही के किनारे पर पहुँच चुका था। क़ुरआन में इसी हालत का इशारा इन शब्दों में है :

> "और तुम आग के गढ़े के किनारे पर खड़े थे।" (क़ुरआन, 3:103)

नबी (सल्ल०) की पैदाइश के वक़्त दुनिया का नक़्शा

तारीख़ का मुताला करनेवाला इनसान जो अरब की उस वक़्त की हालत को जानता है, अच्छी तरह समझ सकता है कि क़ुरआन ने कितना सही नक़्शा उस वक़्त के अरब के हालात का खींचा है। क़बीलों के बीच कई तरह की गुमराहियों के नतीजे में और जाहिली अस्बियतों (बेजा तरफ़दारियों और रिश्तेदारियों) की वजह से इस कसरत (अधिकता) से जंगें होती थीं कि उनमें से कुछ जंगें सौ साल तक होती रहीं। इस हालत से अन्दाज़ा लगाया जा सकता है कि अरब कितना तबाह व बरबाद हुआ होगा।

फिर अरब की अपनी आज़ादी की कैफ़ियत यह थी कि यमन पर हबश का क़ब्ज़ा था और बाक़ी अरब का कुछ हिस्सा ईरान के क़ब्ज़े (अधीनता) में था और कुछ रूमी असर के मातहत। पूरी अरब दुनिया जिहालत में डूबी हुई थी और उस वक़्त की दो बड़ी ताक़तों—ईरान और रूम—की वही अख़्लाक़ी और सियासी हालत थी जो आजकल अमेरिका और रूस की है।

इस हालत में जबकि दुनिया—क़बाइली तरफ़दारियों और मुख़्तलिफ़ क़िस्म की गिरोहबंदियों में जिनकी सरबराही ईरान और रूम कर रहे थे—बँटी हुई थी। नबी (सल्ल०) ख़ुदा की तरफ़ से भेजे गए। वे दुनिया के लीडरों की तरह किसी क़बीले का झंडा लेकर नहीं उठे थे, किसी क़ौमी नारे पर लोगों को इकट्ठा नहीं किया, कोई इक़्तिसादी (मआशी दौलत से संबंधित) नारा बलंद नहीं किया। इन तमाम चीज़ों में से किसी की तरफ़ नबी (सल्ल०) ने दावत नहीं दी :

> "जिस चीज़ की नबी (सल्ल०) ने दावत दी, उसका पहला जुज़ (अंश) यह था कि तमाम इनसानों को तमाम बन्दगियाँ छोड़कर सिर्फ़ एक ख़ुदा की बन्दगी करनी चाहिए।"

सारे इनसानों को तौहीद की दावत

नबी (सल्ल०) की दावत अल्लाह की तरफ़ थी। वह यह कि इबादत सिर्फ़ अल्लाह ही की होनी चाहिए और उसके सिवा आदमी किसी को कारसाज़ न समझे। नबी (सल्ल०) ने यह दावत किसी ख़ास तबक़े या क़ौम को नहीं दी, बल्कि तमाम इनसानों को दी। आप (सल्ल०) की तौहीद की दावत तमाम

इनसानों के लिए थी और आप (सल्ल॰) ने किसी गोरे को, किसी काले को, किसी अरब को, किसी अजमी (ग़ैर-अरब) को उसकी क़ौमी या इलाक़ाई हैसियत से नहीं पुकारा, बल्कि सिर्फ़ आदम की एक औलाद होने की हैसियत से "या अय्युहन्नास" (ऐ लोगो!) कहकर पुकारा। फिर जो दावत आप (सल्ल॰) ने दी वह भी कोई क़ौमी या इलाक़ाई न थी, बल्कि इस्लाह (सुधार) की अस्ल जड़ यानी ख़ालिस तौहीद की दावत थी। इसका मतलब यह था कि :

> "अस्ल ख़राबी यह है कि आदमी अल्लाह को छोड़कर कई क़िस्म के ख़ुदाओं का दामन थाम ले, और अस्ल इस्लाह यह है कि वह अल्लाह का बन्दा बन जाए।"

अगर यह ख़राबी दूर हो गई तो उसकी इस्लाह भी हो जाएगी, वरना लाख जतन के बावजूद सुधार और इस्लाह नहीं होगी।

दूसरी बात जिसकी तरफ़ नबी (सल्ल॰) ने इनसानों को तवोज्जह दिलाई, वह आख़िरत का तसव्वुर था। आप (सल्ल॰) ने आदमी को उसकी ज़ाती हैसियत में जवाबदेह क़रार दिया, ताकि हर आदमी महसूस करे कि उसे अपने आमाल की ज़ाती हैसियत में जवाबदेही करनी है। अगर उसकी क़ौम बिगड़ी हुई थी तो वह यह कहकर नहीं छूट सकता कि मेरा जिस क़ौम से ताल्लुक़ था, वह गुमराह थी :

> "उससे पूछा जाएगा कि अगर क़ौम गुमराह थी तो तुम सीधे रास्ते पर क्यों न रहे, तुम क्यों बेनकेल का ऊँट बने रहे।"

नबी (सल्ल॰) ने पहले लोगों के दिलों में तौहीद और आख़िरत के दो बुनियादी तसव्वुरात बिठाए और उनको पुख़्ता करने में बरसों मेहनत की, तरह-तरह के ज़ुल्म बरदाश्त किए। आप (सल्ल॰) के रास्ते में काँटे बिछाए गए, लेकिन आप (सल्ल॰) ने किसी पर मलामत न की। इस मक़सद के लिए आप (सल्ल॰) ने पत्थर और गालियाँ खा-खाकर लोगों को समझाया कि :

> "अगर ख़ुदा और आख़िरत का तसव्वुर इनसान में नहीं है तो इनसान और जानवर में कोई फ़र्क़ नहीं।"

जब ये दोनों चीज़ें आप (सल्ल॰) ने अपनी क़ौम के ज़ेहन में बिठा दीं, तो फिर उनके सामने ज़िन्दगी का अमली प्रोग्राम पेश किया।

ज़िन्दगी का अमली प्रोग्राम

अमली प्रोग्राम में सबसे पहली चीज़ नमाज़ है। इसकी सबसे पहले ताकीद की गई। नमाज़ से मुराद यह था कि इनसान के दिल व दिमाग़ में यह चीज़ अच्छी तरह रच-बस जाए कि :

"वह अल्लाह का ख़ालिस बन्दा है, उसे सिर्फ़ अल्लाह ही के सामने झुकना और उसकी इताअत करनी है।"

फिर नमाज़ के साथ ज़कात की हिदायत की गई ताकि आदमी के दिल में अल्लाह की राह में ख़र्च करने का जज़्बा पैदा हो। रोज़े की हिदायत बाद में आई है। नमाज़ के बाद जिस चीज़ पर ज़ोर दिया गया है वह ज़कात ही है। इसकी वजह यह है कि इनसान के अन्दर सबसे बड़ा फ़ितना माल की मुहब्बत है।

क़ुरआन में इसी लिए आया है :

"तुम को ज़्यादा से ज़्यादा दुनिया हासिल करने की धुन ने ग़फ़लत में डाल रखा है, यहाँ तक कि (इसी फ़िक्र में) तुम क़ब्र के किनारे तक पहुँच जाते हो।"

(क़ुरआन, 102:1-2)

यानी आदमी का दिल दुनिया की दौलत और अधिकता से कभी नहीं भरता। हदीस में आता है कि आदमी को दौलत की एक वादी (घाटी) मिल जाए तो वह दूसरी की तलाश में निकल खड़ा होता है। इसी हिर्स की इस्लाह के लिए ज़कात और अल्लाह की राह में ख़र्च करने की ताकीद है।

इसके साथ-साथ जहाँ ज़कात का हुक्म दिया गया है, वहाँ यह भी कहा गया है कि आदमी हलाल कमाई की फ़िक्र करे।

अगर चोरी करनेवाला ज़कात की फ़िक्र करेगा तो उसे ख़ुद-ब-ख़ुद खटका होगा कि उसकी कमाई भी हलाल होनी चाहिए।

उसे हलाल की कमाई और हलाल ख़र्च की आदत पड़ेगी। वह दूसरों के हक़ों को पहचानेगा, क्योंकि उसे हिदायत की गई है कि उसकी कमाई में दूसरों का भी हक़ है :

"और उनके मालों में माँगनेवालों और महरूमों का भी हक़ है।"

(क़ुरआन, 51:19)

ये दोनों अमली प्रोग्राम नमाज़ और ज़कात इनसान की इस्लाह की बुनियाद हैं। ये चौदह सौ बरस पहले का इस्लाही प्रोग्राम जिस तरह अरब के लिए इस्लाह का प्रोग्राम था उसी तरह दुनिया भर के लिए इस्लाह का प्रोग्राम था और आज भी इनसान की इस्लाह का प्रोग्राम है।

अगर कोई आदमी ख़ुदा को नहीं जानता, आख़िरत से बेख़ौफ़ है तो उसके सामने कोई मआशी (आर्थिक) प्रोग्राम रख देना बेमानी होगा। ख़ुदा और आख़िरत के ख़ौफ़ के बग़ैर कोई सियासी और मआशी इस्लाह नहीं हो सकती और दुनिया में जो अनेकों क़िस्म के ज़ुल्म हो रहे हैं, उनको दूर नहीं किया जा सकता।

अल्लाह और आख़िरत पर यक़ीन और जवाबदेही के ख़ौफ़ के बग़ैर जो भी इनसान या जमाअत इस्लाह के लिए उठेगी वह इस्लाह की बजाय फ़साद का सबब होगी। वह दोस्ती की बजाय उल्टा ज़ुल्म में इज़ाफ़ा करेगी :

"जो आदमी बाइख़्तियार हो और बेख़ौफ़ हो वह रिश्वत से कैसे बचेगा। आप लाख क़ानून बनाइये, लेकिन उसको लागू करने के लिए जिस क़िस्म के इनसान दरकार हैं वे कहाँ से आएँगे?"

ईमान और अख़्लाक़ की ताक़त

क़ानून की पोज़ीशन भी यही है कि जैसे कोई शख़्स नमाज़ पर अपने ईमान का एलान तो करता है, लेकिन जब अज़ान हो तो वह नमाज़ के लिए उठे नहीं। ज़कात का मुद्दई हो लेकिन जब तलब की जाए तो कहे :

"गर ज़र तलबी सुख़न दरीं अस्त"

(अगर जान चाहते हो तो जान हाज़िर है, लेकिन अगर माल तलब करते हो तो उसपर ग़ौर करना पड़ेगा।)

तो कौन-सी तहरीक होगी इस शख़्स में जो उसको इस्लाह पर आमादा कर सकेगी। ज़ाहिर है कि अगर उसके दिल में कोई ख़ौफ़ न होगा तो उसमें कभी दीन के लिए हरकत न पैदा हो सकेगी।

नबी (सल्ल॰) ने इन्हीं नुकतों पर मक्की दौर में लोगों की इस्लाह की। जब आप (सल्ल॰) ने मक्के से हिजरत फ़रमाई तो इन तर्बियत पाए हुए लोगों की एक छोटी-सी जमाअत आप (सल्ल॰) के साथ थी। इन लोगों की तादाद बद्र

की जंग के वक़्त तीन सौ तेरह थी और जब ये उहृद में गए तो उनकी कुल तादाद सात सौ थी। यह तादाद माद्दी एतिबार से कोई हौसला बढ़ानेवाली न थी, लेकिन चूँकि यह गिरोह तर्बियत पाए हुए लोगों का था, उनको एक अल्लाह और आख़िरत पर पक्का यक़ीन था, इसलिए वे अपने से कई गुना मुख़ालिफ़ीन (दुश्मनों) पर ग़ालिब आए और नौ साल की मुद्दत नहीं गुज़रने पाई थी कि वे पूरे अरब पर छा गए।

यह ख़याल न कीजिए कि उनकी तलवार की काट बड़ी सख़्त थी कि अरब उसका मुक़ाबला न कर सका और ताबेअ हो गया। हक़ीक़त में यह उनके ईमान और अख़्लाक़ की ताक़त थी, जिसने सबको अपने ताबेअ कर लिया। जहाँ तक जंगों और मारिकों का ताल्लुक़ है, इनमें काम करनेवालों की तादाद इतिहास से सिर्फ़ बारह सौ मिलती है। गोया अपने ताबेअ करने का यह काम मैदाने जंग में नहीं हो सकता था, बल्कि सारी तासीर, सारी ताक़त और सारी क़ुव्वत उस किरदार की थी जिसे नबी (सल्ल॰) ने अपने सहाबा (रज़ि॰) के अन्दर चार बुनियादों (तौहीद, आख़िरत, नमाज़ और ज़कात) पर पैदा किया था। यह इसी किरदार का नतीजा था कि ठीक लड़ाई के वक़्त भी उन्होंने हक़ व इन्साफ़ का दामन न छोड़ा, उन्होंने ये लड़ाइयाँ लूट और माले-ग़नीमत के लिए नहीं की थीं, बल्कि हिदायत की रौशनी फैलाने के लिए की थीं। ये सारे करिश्मे उस सीरत (चरित्र) के थे जो नबी (सल्ल॰) ने बड़ी मेहनत से तैयार की थीं। उन्होंने अगर कभी किसी जगह हुकूमत भी की तो लोग उनके इक़्तिदार से ज़्यादा उनके किरदार से मुतास्सिर हुए।

इनसान की आँखों ने इससे पहले कभी बोरिये पर बैठनेवाले हाकिम नहीं देखे थे जिन्होंने अपने आराम और ठाट-बाट के बजाय ख़ुदा के बन्दों को आराम पहुँचाया। वे जागते थे तो लोग सुकून से सोते थे, उनकी हुकूमत जिस्मों से ज़्यादा दिलों पर थी।

नबी (सल्ल॰) की वह तालीम आज भी मौजूद है। मुसलमान आज भी उसे अपना लें तो उनकी हुक्मरानी आज भी उसी तरह तमाम दुनिया पर क़ायम हो सकती है।

अल्लाह तआला ने क़ुरआन मजीद में फ़रमाया है :

"(ऐ रसूल !) हमने तुम्हें सारे संसार के लिए रहमत बनाकर भेजा है।"

(21:107)

अगर कोई शख़्स यह देखना चाहे कि नबी (सल्ल॰) की ज़ाते-मुबारक

इनसान के लिए किस तरह रहमत बनी, तो इस बयान के लिए एक तक़रीर क्या, सैकड़ों तक़रीर और सैकड़ों किताबें भी कम हैं। इनसान रहमत के उन पहलुओं का शुमार नहीं कर सकता। इसलिए मैं आपके सामने इस रहमत के सिर्फ़ एक पहलू के ही बयान पर इकतिफ़ा करूँगा। इस पहलू से देखेंगे तो आपको मालूम होगा कि पूरे इनसानी इतिहास में सिर्फ़ एक ही हस्ती है जो इनसानों के लिए हक़ीक़त में रहमत है।

नबी अकरम (सल्ल०) ने इनसानी समाज के लिए वे उसूल पेश किए हैं जिनकी बुनियाद पर इनसानों की एक बिरादरी बन सकती है और इन्हीं उसूलों पर एक आलमी हुकूमत (World State) भी वुजूद में आ सकती है और इनसानों के बीच वह बँटवारा भी ख़त्म हो सकता है जो हमेशा से ज़ुल्म की वजह बना रहा है।

दुनिया की मुख़्तलिफ़ तहज़ीबों के उसूल

इस नुक्ते की वज़ाहत के लिए मैं पहले दुनिया की मुख़्तलिफ़ तहज़ीबों (विभिन्न सभ्यताओं) के उसूल बताऊँगा ताकि तक़ाबुली-मुताला (तुलनात्मक अध्ययन) से यह मालूम हो सके कि नबी (सल्ल०) ने क्या उसूल पेश किए थे। दुनिया में जितनी भी तहज़ीबें गुज़री हैं, उन्होंने जो भी उसूल पेश किए हैं। वे इनसानों को जोड़नेवाले नहीं हैं बल्कि फाड़नेवाले और उन्हें दरिन्दा बनानेवाले हैं।

आरयाई तहज़ीब (आर्य-संस्कृति)

मिसाल के तौर पर आप सबसे पुरानी आर्य तहज़ीब को ले लीजिए। वे जहाँ भी गए अपने साथ नस्ली बरतरी का तसव्वुर लेकर गए। वे ईरान में रहे तब भी इसी तसव्वुर के साथ रहे और भारत में आए तब भी उनके साथ यही तसव्वुर था। उनके नज़दीक ब्राह्मण सब ज़ातों से ऊँची और बरतर थी, और बाक़ी जितने भी तबक़े या ज़ातें समाज में पाई जाती थीं सब उनसे छोटी और कम हैसियत थीं। आर्य तहज़ीब ने साफ़ तौर पर इनसान को अनेक तबक़ों (वर्गों) में बाँटा और यह बँटवारा इनसानी ख़ूबियों की बुनियाद पर न था, बल्कि पैदाइश की बुनियाद पर था और इसमें इनसानी कोशिश को किसी भी हाल में दख़ल न था। कोशिश से कोई शूद्र ब्राह्मण न बन सकता था और न

कोई ज़ात दूसरी ज़ात में मुंतक़िल हो सकती थी। उनके नज़दीक कुछ इनसान पैदाइशी तौर पर बरतर (उच्च) पैदा हुए थे और कुछ शुरू ही से कमतर और नीच थे।

हिटलर का दावा

इसी उसूल को हिटलर ने इख़्तियार किया था। उसने यह दावा किया था कि जर्मन नस्ल सबसे बरतर और उच्च है।

और नस्ली बरतरी का यही तसव्वुर यहूदी ज़ेहनियत में भी रचा-बसा हुआ है। उनके क़ानून के मुताबिक़ जो पैदाइशी इसराईली नहीं, वह इसराईलियों के बराबर नहीं है। उनका ख़याल है कि यहूदियों के लिए इन्साफ़ का तराज़ू और है और ग़ैर-यहूदियों के लिए और। चुनांचे 'तलमूद' में यहाँ तक लिखा हुआ है कि अगर किसी इसराईली और ग़ैर-इसराईली के बीच झगड़ा या रंजिश हो जाए, तो इसराईली की हर हाल में रिआयत की जाए।

इसी तरह युनानियों के अन्दर भी एक नस्ली ग़ुरूर पाया जाता है। उनकी निगाह में तमाम ग़ैर-यूनानी घटिया और नीच थे।

मग़रिब की पस्त ज़ेहनियत

दूसरी तरफ़ आप देखिए तो यही चीज़ आपको मग़रिबी ज़ेहनियत में पेवस्त दिखाई देती है। मग़रिबी (पश्चिमी) दुनिया सफ़ेद नस्ल की बरतरी के तसव्वुर में मुब्तला है। मग़रिबी दुनिया के लोग समझते हैं कि वे रंगदार (यानी काले, साँवले आदि) नस्ल से बरतर हैं। इसी झूठे ग़ुरूर का नतीजा है कि आज दुनिया ज़ुल्म व फ़साद में सिर से पैर तक डूबी हुई है और सिर्फ़ रंग की बिना पर बे-हद और बे-हिसाब ज़ुल्म दुनिया में तोड़ा जा रहा है। मग़रिबवालों के नज़दीक इस तसव्वुर का जाइज़ होना था, जिसने उन्हें उकसाया कि वे काले लोगों को अफ़्रीक़ा से ग़ुलाम बनाकर लाएँ और बेचें और उनपर जिस तरह चाहें ज़ुल्म ढ़ाएँ, उनके लिए हलाल है। अन्दाज़ा है कि पिछली सदी में कम-से-कम दस करोड़ इनसान ग़ुलाम बनाए गए और उनके साथ ऐसा वहशियाना सुलूक किया गया कि उनमें से सिर्फ़ चार करोड़ ज़िन्दा बचे।

दक्षिणी अफ़्रीक़ा (South Africa) और रूडेशिया में यही ज़ुल्म आज भी इनसान इनसान के साथ कर रहा है।

इलाक़ाई क़ौमियत का नशा

इलाक़ाई क़ौमियत (Territorial Nationalism) का नशा भी तबाही और बर्बादी का सबब रहा है। दुनिया की दो बड़ी जंगें इसी तास्सुब की बुनियाद पर छिड़ीं। लेकिन जैसा कि इस तास्सुब ने अपने अमली नतीजों से दिखा दिया है कि यह आदमियों को जमा करनेवाला नहीं, बल्कि फाड़नेवाला और उनको दरिन्दा बनानेवाला है। ज़ाहिर बात है कि कोई काला गोरा नहीं हो सकता और कोई ग़ैर-मुल्की मुल्की नहीं हो सकता। यह मुमकिन ही नहीं कि आदमी अपनी वतनियत (राष्ट्रीयता) को तब्दील कर सके। वह जहाँ पैदा हुआ है बहरहाल वह उसी मक़ाम का बाशिन्दा होगा।

यही कैफ़ियत खुद अरब में भी थी। क़बीलों की अस्बीयत उन लोगों की नस-नस में रची-बसी हुई थी। हर क़बीला अपने आपको दूसरे के मुक़ाबिले में बरतर व इज़्ज़तवाला समझता था। दूसरे क़बीले का कोई शख़्स कितना ही नेक क्यों न होता, वह एक क़बीले के नज़दीक उतनी क़द्र नहीं रखता था जितना कि उनके नज़दीक उनका अपना एक बुरा आदमी रखता था। नबी (सल्ल॰) के वक़्त में मुसैलिमा कज़्ज़ाब (झूठे नबी होने का दावा करने को) उठा, तो उसके क़बीले के लोग कहते थे कि ''हमारी निगाह में हमारा झूठा आदमी भी कुरैश के सच्चे आदमी से बेहतर है।''

नबी (सल्ल॰) की पुकार

जिस ज़मीन में इनसानों के बीच फ़र्क़ नस्ल, क़बीले और रंग की बिना पर होता था वहाँ नबी (सल्ल॰) ने अपनी पुकार इनसान की हैसियत से बुलन्द की। एक अरब नेशनलिस्ट की हैसियत से नहीं, और न अरब या एशिया का झंडा बुलन्द करने के लिए की थी। आप (सल्ल॰) ने पुकार कर कहा :

> "ऐ इनसानो! मैं तुम सबकी तरफ़ भेजा गया हूँ।"

और जो बात आप (सल्ल॰) ने पेश की, वह यह है :

> "ऐ इनसानो! हमने (अल्लाह ने) तुमको एक मर्द और एक औरत से पैदा किया, और तुमको क़बीलों और गिरोहों में इसलिए बाँटा है ताकि तुम आपस में एक-दूसरे को पहचानो। अल्लाह के नज़दीक बरतर (श्रेष्ठ) और इज़्ज़तवाला वह है जो उससे सबसे ज़्यादा डरता है।" (क़ुरआन, 49:13)

नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि तमाम इनसान अस्ल में एक ही नस्ल से ताल्लुक़ रखते हैं। वे एक ही माँ-बाप की औलाद हैं और इस हैसियत से वे सभी आपस में भाई-भाई हैं। उनके बीच रंग, नस्ल और वतन की बुनियाद पर कोई फ़र्क़ नहीं किया जा सकता।

तुमको क़बीलों में बाँटा ताकि तुम आपस में एक-दूसरे को पहचानो—यानी यहाँ जो कुछ भी फ़र्क़ है इससे मक़सूद पहचानना है। इसकी हक़ीक़त इसके सिवा कुछ नहीं कि ख़ानदान जमा होते हैं, तो एक बस्ती बन जाती है और बस्तियाँ जमा होती हैं तो एक वतन वुजूद में आ जाता है। यह सब कुछ एक-दूसरे को पहचानने के लिए है। और ज़बान (भाषा) में भी जो कुछ फ़र्क़ है वह सिर्फ़ पहचान के लिए है। अल्लाह तआला ने यह फ़ितरी फ़र्क़ पहचान के लिए रखा है और यह फ़र्क़ आपसी मदद (Co-operation) के लिए है, न कि नफ़रत, दुश्मनी और भेदभाव के लिए।

इस्लाम में बरतरी का तसव्वुर

दुनिया में बरतरी का तसव्वुर रंग की बिना पर, काले या गोरे होने की बिना पर तो पाया जाता है, लेकिन इस बिना पर बरतरी का तसव्वुर नहीं पाया जाता कि कौन बुराइयों से ज़्यादा बचनेवाला है, कौन नेकियों को ज़्यादा इख़्तियार करनेवाला है, कौन अल्लाह से ज़्यादा डरता है। देखा यह जाता है कि कौन एशिया में पैदा हुआ है और कौन यूरोप में। ख़ुदा के रसूल (सल्ल॰) ने बताया कि देखने की अस्ल चीज़ें ये नहीं, बल्कि इनसान के अख़्लाक़ हैं। यह देखिए कि कौन ख़ुदा से डरता है और कौन नहीं। अगर आपका हक़ीक़ी भाई ख़ुदा के ख़ौफ़ से दूर है तो वह इज़्ज़त के क़ाबिल नहीं है, लेकिन दूर की क़ौम का कोई आदमी, चाहे वह काले रंग ही का क्यों न हो, अगर ख़ुदा का ख़ौफ़ रखता है तो वह आपकी निगाह में ज़्यादा क़द्र के क़ाबिल होना चाहिए।

उम्मते-वस्त का क़ियाम

नबी (सल्ल॰) फ़लसफ़ी (दार्शनिक) नहीं थे कि सिर्फ़ एक फ़ल्सफ़ा (दर्शन) पेश कर दिया। आप (सल्ल॰) ने इस बुनियाद पर एक उम्मत बनाई और उसे बताया कि :

"हमने तुम्हें उम्मते-वस्त बनाया, ताकि तुम लोगों पर गवाह हो।"

(क़ुरआन, 2:143)

'उम्मते-वस्त' से मुराद एक ऐसी आला और अफ़ज़ल क़ौम है जो जानिबदारी के लिहाज़ से न किसी की दुश्मन है और न किसी की दोस्त। उसकी हैसियत एक जज की-सी है जो हर लिहाज़ से ग़ैर-जानिबदार (निष्पक्ष) होता है। वह न किसी का दोस्त होता है कि तरफ़दार बन जाए, न दुश्मन होता है कि मुख़ालिफ़त में तवाज़ुन या संयम खो दे। उसका मक़ाम यह होता है कि उसका बेटा भी अगर कोई ज़ुर्म कर दे, तो वह उसे भी सज़ा देने में न झिझकेगा।

जज की यही हैसियत पूरी उम्मत को दे दी गई है। मतलब यह है कि मुसलमान क़ौम उम्मते-आदिल (इनसाफ़ करनेवाला समुदाय) है।

अब यह उम्मत इनसाफ़ करनेवाली बनती किस चीज़ पर है? यह किसी क़बीले पर नहीं बनती, किसी नस्ल या वतन पर नहीं बनती, यह बनती है तो एक कलिमे पर, यानी अल्लाह और उसके रसूल (सल्ल॰) का हुक्म मान लो तो जहाँ भी पैदा हुए हो, जो भी रंग-रूप है, भाई-भाई हो। इस बिरादरी में जो भी शामिल हो जाता है उसके हुक़ूक़ सबके साथ बराबर हैं। किसी सैयद और शैख़ में कोई फ़र्क़ नहीं, और न अरबवाले को ग़ैर-अरबवाले पर कोई बरतरी हासिल है। इस कलिमे में शरीक हो गए तो सब बराबर। नबी (सल्ल॰) ने इसी लिए फ़रमाया था :

"किसी अरबी को अजमी (ग़ैर-अरबी) पर बरतरी नहीं है और न किसी अजमी को अरबी पर, न किसी काले को गोरे पर बरतरी है, न गोरे को काले पर। तुम सब आदम की औलाद हो और आदम मिट्टी से बने थे। तुममें सबसे ज़्यादा इज़्ज़त पानेवाला वह है जो सबसे ज़्यादा ख़ुदा से डरनेवाला है।"

इस्लामी अद्ल व इंसाफ़ की एक मिसाल

इसी चीज़ को मैं एक वाक़िया से आपको समझाता हूँ। ग़ज़्व-ए-बनी मुस्तलिक़ में मुहाजिरीन और अंसार दोनों शरीक थे। इत्तिफ़ाक़ से पानी पर एक मुहाजिर और अंसार का झगड़ा हो गया। मुहाजिर ने मुहाजिरों को पुकारा और अंसार ने अंसारों को। आप (सल्ल॰) ने यह पुकार सुनी तो ग़ुस्से से भरकर फ़रमाया :

"यह कैसी जाहिलियत की पुकार है। छोड़ दो इस गंदी पुकार को।"

इससे नबी (सल्ल.) की मुराद यह थी कि अगर एक आदमी दूसरे आदमी पर ज़ुल्म ढा रहा है तो मज़लूम का सारी मुस्लिम उम्मत पर हक़ है कि वह उसकी मदद को पहुँचे, न कि किसी एक ख़ास क़बीले और बिरादरी पर। लेकिन सिर्फ़ अपनी ही बिरादरी को पुकारना यह जाहिलियत का तरीक़ा है। मज़लूम की हिमायत मुहाजिर और अंसार दोनों पर फ़र्ज़ थी। अगर ज़ालिम किसी का हक़ीक़ी भाई है तो उसका फ़र्ज़ है कि सबसे पहले वह उसके ख़िलाफ़ ख़ुद उठे। लेकिन अपने गिरोह को पुकारना यह 'इस्लाम' नहीं, 'जाहिलियत' है। इस्लाम इसी लिए कहता है :

"इनसाफ़ को क़ायम करनेवाले बनो।"

इनसानों को क़ाबू में करने की सिफ़त

इस उम्मत में बिलाल हबशी (रज़ि.) भी थे, सलमान फ़ारसी (रज़ि.) भी और सुहैब रूमी (रज़ि.) भी। यही वह चीज़ थी जिसने सारी दुनिया को इस्लाम के क़दमों में ला दिया। ख़िलाफ़ते-राशिदा के मुबारक दौर में मुल्क-पर-मुल्क फ़तह होते चले गए। इसलिए नहीं कि मुसलमानों की तलवार सख़्त थी, बल्कि इसलिए कि वे जिस उसूल को लेकर निकले थे उसके सामने कोई गर्दन झुके बग़ैर न रह सकती थी। ईरान में वैसा ही ऊँच-नीच का फ़र्क़ था जैसा कि अरब जाहिलियत में (इस्लाम से पहले)। जब ईरानियों ने मुसलमानों को एक सफ़ में खड़े देखा तो उनके दिल ख़ुद-ब-ख़ुद झुकते चले गए। इसी तरह मुसलमान मिस्र (Egypt) में गए तो वहाँ भी इसी उसूल ने अपना रंग दिखाया। ग़रज़ मुसलमान जहाँ-जहाँ भी गए लोगों के दिल जीतते चले गए। इस जीत में तलवार ने अगर एक फ़ीसद काम किया है तो इस अद्ल और इनसाफ़ के उसूल ने निन्यानवे फ़ीसद काम किया।

आज दुनिया का कौन-सा हिस्सा है जहाँ मुसलमान नहीं हैं। हज के मौक़े पर हर मुल्क का मुसलमान जमा हो जाता है। अमेरिका के मुसलमान नेग्रो रहनुमा मैलकम इक्स ने हज का यह मंज़र देखकर कहा था :

"नस्ली मसले का इसके सिवा कोई हल नहीं है।"

सिर्फ़ यही वह चीज़ है जिसपर दुनिया के तमाम इनसान जमा हो सकते

हैं। ज़ाहिर बात है कि इनसान कहीं भी पैदा हो, वह अपनी वतनियत बदल नहीं सकता। लेकिन एक उसूल पर अमल करनेवाला ज़रूर बन सकता है। नबी (सल्ल॰) ने इनसान को एक ऐसा कलिमा दे दिया कि जिसपर वे जमा भी हो सकते हैं और एक आलमी रियासत (World State) भी तामीर कर सकते हैं।

मुसलमानों पर ज़वाल (पतन) क्यों आया?

मुसलमान जब भी इस उसूल से हटे, मार खाई। स्पेन पर मुसलमानों की आठ सौ साल हुकूमत रही। जब मुसलमान वहाँ से निकले तो उसकी वजह थी—क़बीलों की तरफ़दारी की बिना पर आपसी लड़ाई। एक क़बीला दूसरे के ख़िलाफ़ उठ खड़ा हुआ और आपस में ही एक-दूसरे से लड़ने लगे। नतीजा यह हुआ कि मुसलमानों की हुकूमत ख़त्म हुई और वे वहाँ से ऐसे मिटे कि आज वहाँ मुसलमान दिखाई नहीं देता।

इसी तरह हिन्दुस्तान में भी मुसलमानों की ताक़त क्यों टूटी? इनमें भी वही जाहिलियत की असबियतें उभर आई थीं। कोई अपने मुग़ल होने पर नाज़ करता था तो कोई पठान होने पर। नतीजा यह निकला कि वे पहले मराठों से पिटे, फिर सिखों से पिटे और आख़िर में 6000 मील दूर से एक ग़ैर-क़ौम आकर इनपर हाकिम बन गई।

इसी सदी में तुर्की की अज़ीमुश्शान सल्तनत ख़त्म हो गई। अरब तुर्कों से लड़ने लगे। अरब अपने नज़दीक अपने लिए आज़ादी हासिल कर रहे थे, लेकिन हो यह रहा था कि सल्तनते-उस्मानिया का जो भी टुकड़ा तुर्कों के क़ब्ज़े से निकलता था, वह या तो अंग्रेज़ों के क़ब्ज़े में पहुँच जाता था या फ्रांसीसियों के हाथ लग जाता था।

आज मुसलमान, मुसलमान को खाए जा रहा है!

और यही मामला आज भी है। अरब, अरब को खाए जा रहा है। यमन में ढाई लाख अरब ख़ाना-जंगी (Civil war) में मारे गए। अरब और इस्राईल की जंग में भी हार की यही बड़ी वजह थी। एक ज़बान रखते और एक नस्ल होते हुए भी वे एक-दूसरे के दुश्मन हो गए थे। उर्दुन, शाम और लिबनान पहले 1948 ई॰ में पिटे, फिर 1956 ई॰ में पिटे और फिर 1967 ई॰ में पिटे।

हालाँकि ये सब और मिस्र जमा हो जाएँ तो अपनी तादाद और रक़बे (Area) के लिहाज़ से इस्राईल से कई गुना बड़े हैं।

मैंने आपको तारीख़ से बता दिया है कि मुसलमान जब अपने कलिमे पर जमा हुए तो ग़ालिब आए, लेकिन जब वे रंग, नस्ल और वतन की बुनियाद पर जमा हुए तो कटे और मिटे। स्पेन जैसी अज़ीमुश्शान सल्तनत मुसलमानों से इसी वजह से छिनी। हिन्दुस्तान में उन्होंने इसी वजह से शिकस्त खाई और इसी वजह से उन्हें मश्रिक़े-वुस्ता में शिकस्त का मुँह देखना पड़ा।

नबी (सल्ल॰) की सीरत को अपनाइए

आप सीरत पर कॉफ़्रेंस ज़रूर करें। रसूल (सल्ल॰) के ज़िक्र से ज़्यादा मुबारक कोई काम नहीं, लेकिन यह सिर्फ़ ज़िक्र और Lip Service (ज़बानी जमा-ख़र्च) होकर न रह जाए। इसपर अमल करेंगे तो उस रहमत से आपको हिस्सा मिलेगा जो सिर्फ़ रसूल (सल्ल॰) की पैरवी करनेवालों के लिए मुक़द्दर है। हदीस में इसी लिए बयान हुआ है :

> "क़ुरआन तुम पर हुज्जत है, तुम्हारे हक़ में या तुम्हारे ख़िलाफ़।"

कोई क़ौम इसकी पैरवी करती है तो यह क़ुरआन उसके हक़ में हुज्जत (दलील) है और जो पैरवी नहीं करती और वह जानती है कि यह हक़ है तो यह उसके ख़िलाफ़ हुज्जत बनकर खड़ा होगा। यह ऐसा ही है, जैसे कोई शख़्स क़ानून को जाननेवाला है और दूसरा उससे नावाक़िफ़ है। क़ानून उसके ख़िलाफ़ हुज्जत है जो क़ानून को जानता है लेकिन फिर भी उसकी ख़िलाफ़वर्ज़ी करता है। इस कलिमे को लेकर उठेंगे तो न सिर्फ़ अपना देश मज़बूत और पायेदार होगा बल्कि पूरब और पच्छिम फ़तह कर लिए जाएँगे। लेकिन कलिमे को छोड़ा और क़ौमियत के पीछे पड़े तो एक सूखी घास के टुकड़े की हैसियत भी बाक़ी न रहेगी।

मेरी दुआ है कि अल्लाह हम सबको सरवरे-कायनात मुहम्मद (सल्ल॰) का सच्चा उम्मती बनने की तौफ़ीक़ अता फ़रमाए। आमीन!!

❑❑❑

अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया

● 'सबसे अच्छा कलाम अल्लाह की किताब है और सबसे अच्छा नमूना मुहम्मद (सल्ल॰) हैं। सबसे बुरे काम वे हैं जो दीन में नए बढ़ाए गए हैं और दीन में कोई भी नई बात दाख़िल करना गुमराही है।' —मुस्लिम

● 'तुममें से सबसे ऊँचा इनसान वह है जो क़ुरआन सीखे और दूसरों को सिखाए।' —बुख़ारी, मुस्लिम

● 'इस्लाम की बुनियाद पाँच बातों पर है। इस बात की गवाही देना कि अल्लाह के सिवा कोई बन्दगी के लायक़ नहीं और मुहम्मद (सल्ल॰) उसके बन्दे और उसके रसूल हैं। नमाज़ क़ायम करना। ज़कात देना। हज करना। रमज़ान के रोज़े रखना।' —बुख़ारी, मुस्लिम

● 'बड़े गुनाह ये हैं—अल्लाह के साथ किसी को शरीक करना। माँ-बाप का हुक्म न मानना। किसी जानदार को क़त्ल करना। झूठी गवाही देना।' —बुख़ारी, मुस्लिम

● 'सात घातक और तबाह कर देनेवाले गुनाहों से बचो। सहाबा (रज़ि॰) ने अर्ज़ किया कि वे कौन से हैं? आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, 'अल्लाह के साथ शिर्क, जादू, नाहक़ क़त्ल, ब्याज़ लेना, यतीम का माल खाना, जिहाद के मौक़े पर मैदान से भाग खड़ा होना और पाक दामन, ईमानवाली भोली-भाली औरतों पर ज़िना का ऐब लगाना।' —बुख़ारी, मुस्लिम

● 'चार बातें ऐसी हैं जिस आदमी में ये सब हों वह ख़ालिस मुनाफ़िक़ है और अगर किसी आदमी में उनमें से एक बात पाई जाती है तो उसमें निफ़ाक़ की एक अलामत मौजूद होगी, जब तक कि उसे छोड़ न दे। (वे बातें ये हैं) जब अमानत रखी जाए तो ख़यानत करे। बात करे तो झूठ बोले। वादा करे तो उसे पूरा न करे और किसी से झगड़े तो गालियों पर उतर आए और इनसाफ़ से हट जाए।' —बुख़ारी, मुस्लिम

● 'उस ज़ात की क़सम जिसके हाथ में मेरी जान है, तुममें से कोई आदमी उस वक़्त तक मोमिन नहीं हो सकता जब तक वह अपने भाई के लिए वही कुछ न चाहे जो अपने लिए चाहता है।' —बुख़ारी, मुस्लिम

● 'उसकी नाक मिट्टी में मिले, उसकी नाक मिट्टी में मिले, उस की नाक मिट्टी में मिले' पूछा गया, किसकी ऐ अल्लाह के रसूल? फ़रमाया, जिसने अपने माँ-बाप दोनों या उनमें से किसी एक का बुढ़ापा पाया, फिर जन्नत में न जा सका।' —मुस्लिम

● 'दुनिया सबकी सब, कुछ दिन का सामान है और इस सामान में सबसे अच्छी चीज़ नेक बीवी है।' —मुस्लिम

● '(नाते-रिश्ते को) काटनेवाला जन्नत में नहीं जाएगा।'

—बुख़ारी, मुस्लिम

● 'खुदा क़सम वह मोमिन नहीं, खुदा क़सम वह मोमिन नहीं, खुदा क़सम वह मोमिन नहीं।' पूछा गया, 'कौन? (मोमिन नहीं है) ऐ अल्लाह के रसूल!' प्यारे नबी (सल्ल०) ने जवाब दिया, 'जिसका पड़ोसी उसकी शरारत से बचा हुआ न हो।' —बुख़ारी, मुस्लिम

● 'अल्लाह उस आदमी पर रहम (दया) नहीं करता जो इनसानों पर रहम नहीं करता।' —बुख़ारी, मुस्लिम

● 'रहम करनेवालों पर रहीम रहम करेगा। ज़मीनवालों पर रहम करो आसमान वाला तुम पर रहम करेगा।' —अबू दाऊद, तिर्मिज़ी

● 'शर्म पूरी की पूरी भलाई ही है।' —बुख़ारी, मुस्लिम

● 'जिसे नर्मी न मिली उसे भलाई न मिली।' —बुख़ारी

● 'चुग़ली करनेवाला जन्नत में दाख़िल न हो सकेगा।'

—बुख़ारी, मुस्लिम

● 'दुनिया में इस तरह रहो जैसे तुम परदेसी हो या राह चलते मुसाफ़िर।' —बुख़ारी

(प्रकाशक)

□□□